P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-10* (Part-1) January 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

समकालीन परिदृश्य पर चंद्रगुप्त

राज भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

सारांश

जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की गहरी चेतना समाहित रही है। प्रसाद का नाट्य साहित्य विशेष रूप से इसकी गवाही देता है। प्रसाद का नाट्य चिंतन मानव–स्वातंत्र्य, सांस्कृतिक मूल्य बोध, इतिहास की गौरवशाली व्याख्या जैसे व्यापक भावबोध में अपने राष्ट्र की आज़ादी, जनमानस में मूल्य बोध का संचार, राष्ट्र के प्रति प्राणोत्सर्ग करने की भावना का संचार करता है। समकालीन संदर्भ में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों की प्रासंगिकता को समझने के लिए प्रसाद का नाटक 'चन्द्रगुप्त' एक बेहतरीन विकल्प है।

मुख्य शब्द : चंद्रगुप्त, परिदृश्य।

प्रस्तावना

भारतीय चिंतन की आधार भूमि 'अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्' के मूल मन्त्र पर टिकी है। इस अर्थ में आत्म विज्ञापन भारती मेधा के लिए कभी भी रुचिकर नहीं हुआ। पूरे विश्व को अपना कुटुम्ब समझना तथा व्यक्ति परिवार और समाज से भी ऊपर, उदार चरित्र की स्थापना करना हमारा मुख्य ध्येय रहा है। उदार चरित्र की रचना एक विराट सांस्कृतिक चेतना की वैभवशाली प्रस्तुति है। भारत का सांस्कृतिक व्यक्तित्व अध्यात्म परक है। आध्यात्मिकता के हवाले से पूरी सांस्कृतिक परम्परा की ऐतिहासिक विवेचना में भारतीय मेधा के मुख्यतः दो विभाजन उभर कर सामने आते हैं। एक जो निजी तपस्या के आधार पर अपनी अनंत योग शक्ति का संधान कर ब्रह्ममंडल में अवस्थित स्वर्ग को ही भूमि पर उतार लाने को आतुर रहते हैं।

अंग्रेज अपने इस अहंवादी मेधावी प्रयास में वे कई बार व्यक्तियों की टकराहट के कारण विश्वामित्र की तरह त्रिशंकु बनकर लटक जाते हैं। जबकि इस अध्यात्म संसार का दूसरा वर्ग वह जो सर्जक और रचनाकार होते हुए भी अपने से बहुत बड़े ऐसे उदात्त चरित्र की रचना करते हैं जो इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने की कामना रखते हैं। अर्थात् स्वर्ग ऊपर से नीचे उतारकर लाने की अपेक्षा इस भूमि पर ही स्वर्ग पैदा करने की आध्यात्मिक चेतना का प्रतिष्ठान करते हैं। वाल्मीकि और तुलसीदास ने राम के चरित्र को इस धरा पर उतारने का ऐसा ही भागीरथ प्रयास किया है। व्यास ने कृष्ण के विराट चरित्र की रचना भी इसी उद्देश्य से की है। राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के उदात्त चरित्र है। जिन्होंने भारतीय आध्यात्मिक सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण में महत्ती भूमिका निभायी है।

अध्ययन का उद्देश्य

हिंदी साहित्य की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक यात्रा में जयशंकर प्रसाद भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। वस्तुतः 'चंद्रगुप्त' नाटक का मूल स्वर भारतीय संस्कृति और अखंडता है। प्रसाद ने अतीत के गौरवशाली क्षणों को चंद्रगुप्त में पुनः आलोकित कर हमें उजाले की एक ऐसी किरण दी है जिससे हम अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सही से पहचान सकते है। प्रसाद ने इतिहास की ऊर्जा का प्रासंगिक अर्थ में उपयोग किया है, जो इनके साहित्य अध्येताओं के लिए निश्चय ही ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा।

हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक यात्रा में जयशंकर प्रसाद तुलसी की परम्परा के रचनाकार है। तुलसीदास ने अपने युग की विकट परिस्थितियों के बरकस 'रामराज्य की कल्पना' का आदर्श स्वप्न देखा था। राम के उदात चरित्र को पूरे भारतीय जनमानस के भीतर एक विराट–वैभवशाली संस्कृति–पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया था। शील–शक्ति–सौन्दर्य के प्रतीक राम 'मर्यादापुरुषोत्तम' रूप में भारतीय संस्कृति के शाश्वत् प्रश्नों से जूझते हैं, और उनके भविष्योन्मुखी प्रत्युत्तर खोजते हैं। आधुनिक काल में (1910–33) में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की पुनर्व्याख्या करते हुए जय शंकर प्रसाद इसी

परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। एक संस्कृति पुरुष के रूप में पुनर्जागरण और नवजागरण के आन्दोलन में भारतीय संस्कृति और मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा करते हैं। छायावादी कवि के रूप में वे एक ऐसे रोमांटिक कवि है जो प्रेम–सौन्दर्य–यौवन के गीत गाते हैं। प्रेम की अनुभूति जन्य विह्लता उनकी रचनाओं को देश काल से परे ले जाती है। उनका यह दर्जा राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम से गुजरते हुए मानवतावादी रंगों में ढलता है। उदात्त प्रेम का उत्सर्गवादी चरित्र उनके रचना संसार का केन्द्रीय पात्र है।

प्रेम की इस उदात्त भावना में ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की गहरी चेतना समाहित रही है। उनका नाट्य साहित्य इसकी पुरजोर गवाही देता है। जहाँ पर युग सापेक्षता के धरातल पर भारतीय इतिहास और संस्कृति से चन्द्रगुप्त, चाणक्य स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे उदात्त चरित्रों को साहित्य में पुनर्प्रतिष्ठित किया गया है। जयशंकर प्रसाद राष्ट्रीय आन्दोलन के समय के रचनाकार थे। उनके समय में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष अपने चरम पर था। गांधी के नेतृत्व में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से मुक्ति का रास्ता खोजा जा रहा था । अंग्रेजों का दमन चक्र अपने सारे हथकंडों के साथ जारी था। अंग्रेज भारतीय समाज की सभी कमजोरियों का अपने स्वार्थ हेतु उपयोग कर रहे थे।

'चौरी–चौरा' कांड के बाद जब महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित किया तो सम्पूर्ण आजादी के पक्षधर राष्ट्रीय नेताओं ने इसका तीखा विरोध दर्ज कराया । नेताजी सुभाष ने वियना से मई 1933 में 'घोषणा पत्र' जारी किया कि "हमारा यह स्पष्ट विचार है कि एक राजनीतिक नेता के रूप में महात्मा गांधी असफल हो चुके हैं। इसलिए वक्त आ गया है कि एक नए सिद्धांत और कार्यक्रम के तहत कांग्रेस को मौलिक रूप से फिर से व्यस्थित किया जाए। "नेताजी समाज की इस उद्घोषणा से मिलते–जुलते स्वर तत्कालीन साहित्य में भी सुनायी पड़ रहे थे। क्रांतिकारी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' गांधी–नेहरू के राजनीतिक फैसलों से खिन्न होते हुए किसी 'पुरुषोत्तम नवीन' की कल्पना कर रहे थे। गांधी को 'बनियों का भगवान' और नेहरू को 'रनवास की रानी' कहकर अपना विरोध दर्ज करवा रहे थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सम्मुख भारतीय जनमानस में निराशा–हताशा और पराजय के भावों का अंधकार छाया हुआ था। ऐसे में राष्ट्रीय मूल्यों के प्रहरी साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने अपनी युग प्रवर्तक सक्रिय भूमिका पहचानी। उन्होंने निराशा और वेदना से अचेत हो रही सुप्त प्रायः जनता के ह्रदय में जातीय चेतना की अलख जगायी। उन्होंने गौरवशाली अतीत की नयी–चेतना से युक्त पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की। जयशंकर प्रसाद ने पुराण और इतिहास का गहन अनुशीलन किया था। इसीलिए अपनी साहित्यिक रचनाओं की लम्बी शोध परक भूमिकाओं में उन्होंने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। 'इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक है। ...क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं... इसमें मुझे सन्देह है।

इस रूप में प्रसाद ने राजनीतिक रूप से निर्लिप्त निराश हो रही भारतीय जातीय–चेतना में इतिहास के हवाले से सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा की। उन्होंने मौर्य काल, गुप्त काल एवं हर्षकाल की ऐतिहासिक घटनाओं, स्थितियों और चरित्रों में समकालीन चुनौतियों से रूबरू होने वाले कलात्मक रंग भरे। अपनी सृजनधर्मिता के बल पर निराशा में सांस्कृतिक–राष्ट्रीय चेतना के नवजागरणवादी स्वर फूंके। प्रसाद के नाट्य साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. बच्चन सिंह स्पष्ट करते हैं कि "भारतीय इतिहास के स्वर्णयुगीन पृष्ठों को नाटकों का उपजीव्य बनाने का अर्थ है कि उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था। किन्तु उनके रोमांटिक दृष्टिकोण ने उन्हें नयी अर्थवत्ता में पिरोया। ठीक इसी तरह जिस तरह भारतीय पुनर्जागरण ने अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को युगानुरूप नया अर्थ दिया। मौर्यकालीन कथानक में उनका अपना युग बोलता है, गुप्तकालीन कथानक में उनके समय की प्रतिच्छवियाँ देखी जा सकती है।"[1] इस अर्थ में प्रसाद भारतेन्दु युग की कठोर–आदर्शवादिता की अपेक्षा राष्ट्रवेदी पर एक रोमांटिक–उत्सर्गवादी मूल्यबोध से प्रेरित पात्रों का निर्माण करते हैं। वे अपने समय के मनोविश्लेषणवादी, अस्तित्ववादी गहव्रों में डूबे रचनाकारों के लिए साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और अपसंस्कृतिकरण के दौर में अपनी राष्ट्रीय भूमिका पहचानते हैं। उनके अनुसार "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकरण घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत प्रयत्न किया है।"[2]

इस रूप में प्रसाद अपने युग की चुनौतियों का डटकर मुकाबला करते है। सांस्कृतिक मूल्य बीज के औजारों से उनके विरूद्ध गहरी संवेदनाएँ जागृत करते हैं। राज्यश्री (1915) विशाख (1921), अजातशत्रु (1922) जयमेजय का नागयज्ञ (1926) स्कन्दगुप्त (1928) चन्द्रगुप्त (1931) ध्रुवस्वामिनी (1933) जैसी उनकी नाट्य रचनाएँ इसका सशक्त प्रमाण है। अनेक विद्वान चन्द्रगुप्त को उनकी श्रेष्ठ नाट्यकृति मानते हैं। अब प्रश्न उठता है कि प्रसाद के युग में जो सामाजिक–सांस्कृतिक राजनीतिक–धर्मिक चुनौतियाँ भारतीय समाज के सामने मुंह बाए खड़े थी, क्या वे आज की चुनौती बनकर भी हमारे सामने हैं? यदि है तो क्या प्रसाद या उनके युग के साहित्य में उनका समाधान करने का सामर्थ्य है? अर्थात् प्रसाद नाट्य–साहित्य की आज के जनमंच पर क्या प्रासंगिकता है?

दरअसल साहित्य अपने समय का अदम्य जीवन लालसा से भरा एक ऐसा संवेदनशील दस्तावेज होता है जो अपने युग की समस्याओं से तो जूझता ही है, आगामी प्रश्नों के प्रति भी सचेत करता है। इस भूमिका में श्रेष्ठ साहित्य अपने भीतर कतिपय शाश्वत मूल्यों की रचना

करता हुआ समय सापेक्ष मूल्यों की भी खोज करता है। प्रसाद का नाट्य चिंतन–मानव–स्वातन्त्र्य, सांस्कृतिक मूल्य बोध इतिहास की गौरवशाली व्याख्या जैसे व्यापक भाव बोध में अपने राष्ट्र की आजादी, जनमानस में राष्ट्रीय मूल्य बोध को संचार, व्यक्ति से बड़ा देश, राष्ट्र के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना का भी संचार करता है। आजादी के लगभग सत्तर साल बाद भारतीय समाज राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्य बोध के स्तर पर आज एक विशिष्ट दौर से गुजर रहा है। संचार क्रांति के दम पर सूचनाओं के ठीक–गलत विस्फोट ने भारतीय धर्म–संस्कृति–राष्ट्र और समाज संबंधी परम्पराओं और मूल्यों को पूरी तरह से झकझोर दिया है। आर्थिक स्तर पर टेक्नोलॉजी के दम पर सुदूर अमेरिका में बैठा हुआ व्यक्ति भी हमारी अर्थव्यवस्था को झकझोर रहा है। उत्पादन उपभोक्ता–वितरण और सर्विस का ऐसा मायाजाल बुन लिया गया है कि व्यक्ति बाजार की शक्ति का एक खिलौना बन गया है। यह नव–उपनिवेशवादी चिंतन है। जहाँ ग्लोबलाइजेशन के हवाले से आपके दरवाजे पर सभी 'सेवाएँ' मौजूद है। भूमण्डलीकरण की इस आंधी ने हमारे परम्परागत–राष्ट्रीय–सांस्कृतिक आध्यात्मिक चिंतन के सम्मुख कई चुनौती पेश कर दी है। देश का राजनीतिक नेतृत्व इन बाहरी और भीतरी चुनौतियों के समाधान देने में लगभग असफल रहा है। राष्ट्रीय फलक पर किसी गांधी, सुभाष या चाणक्य जैसे विराट चरित्र का अभाव स्पष्ट झलकता है। राम–कृष्ण हनुमान जैसे विराट सांस्कृतिक मूल्यों के वाहक चरित्र आज जाति के ऊँच–नीच के भेद–भावों में अपना अस्तित्व ढूंढ रहे हैं। समस्त भारतीय जातीय चेतना के वाहक ये मिथकीय चरित्र आज वोट की राजनीति ने बौने बना दिए है। हिन्दू–मुस्लिम सम्प्रदायों को धर्मिक वैमनस्य से भरने का प्रयास हो रहा है। समाज राजनीति, मीडिया, संगठन अथवा संस्थाओं के शीर्ष पर अधिकांशतः बौने चरित्र के लोगों का जमावड़ा है। वे अपने क्रिया व्यापार से समाज में सफलता हेतु साधन की शुद्धता जैसे भावों को बेमानी सिद्ध करते हैं। उन्हीं से प्रभावित समाज का एक मुखर तबका अपने अधिकारों को पाने के लिए सड़क पर नारे लगाता है। वह केवल अधिकांश प्राप्त करने को तत्पर है। कर्तव्य के नाम पर कुछ देने को तैयार नहीं।

इसी स्तर पर प्रसाद युगीन नाटक साहित्य अपनी सार्थकता प्राप्त करता है। 'चन्द्रगुप्त' और अन्य समकालीन रचनाएँ अपनी समस्त साहित्यिक दर्जा के साथ आज के इन ज्वलन्त प्रश्नों के समाधान तलाशती है। वस्तुतः 'चन्द्रगुप्त' नाटक की कथाभूमि, भारतीय सांस्कृति अखंडता चन्द्रगुप्त नाटक का मूलस्वर है। चन्द्रगुप्त नाटक का वैचारिक संघर्ष दो स्तरों पर विकसित हुआ है। प्रथम विदेशी साम्राज्यवादी ग्रीक संस्कृति के आक्रमणों के प्रतिकार में और दूसरा वैदिक और बौद्ध धर्म के धार्मिक–सांस्कृतिक संघर्ष में प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक में विश्व विजेता सिकन्दर के भारतीय वीरों की वीरता से प्रभावित होकर वापिस लौटने की कथा का निर्माण किया है जबकि नन्दवंश के अमात्य राक्षस और चाणक्य के मध्य बौद्ध–धर्म और वैदिक धर्म को लेकर तीखा संवाद होता है।

सिकन्दर भारतीयों की वीरता, ब्राह्मणों की गुरुत्व गरिमा और निर्भीकता से पराभूत होता है। चन्द्रगुप्त की वीरता और चाणक्य की विलक्षण बुद्धिमता की वह स्तुति करता है। आर्यवीर मैंने भारत में हरक्यूलिस एचिलिस की आत्माओं को देखा और दिमास्थनीज को ? संभवतः प्लेटो और अरस्तु भी होंगे। मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।''[3] उल्लेखनीय है कि सिकन्दर का यह अभिनन्दन किसी भय, पराजय अथवा तलवार से संचालित न होकर भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक गुणों से प्रभावित रूप में सामने आता है। दान्ड्यायन जैसी त्याग–तपस्या विराग की प्रतिपूर्ति, आक्रमणकारी क्रूर सिकन्दर का हृदय परिवर्तन करने की अद्भुत क्षमता रखती है। सिकन्दर भारत–भूमि की सांस्कृतिक आदर्शवादिता से विमुग्ध होकर कहता है कि ''धन्य है आप मैं तलवार खींचे हुए भारत में आया, हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय–विमुग्ध हूँ। जिनमें खड्ग–परीक्षा हुई थी, युद्ध में जिनसे तलवारें मिली थी, उनसे मैत्री के हाथ मिलाकर जाना चाहता हूँ।''[4] आज के सन्दर्भ में भी विदेशी संस्कृति के प्रभाव और उनके आक्रमणों से हम अपनी योग–शक्ति त्याग तपस्या, मितव्ययता, जरूरत के मुताबिक ग्रहण करने की आवश्यकता जैसे मूल्यों के बल पर लड़ सकते हैं। यह प्रश्न आज विश्व पटल पर चिंता का विषय बना हुआ है कि क्या आने वाले समय में ग्लोबलाइजेशन की आंधी विश्व की सभी संस्कृतियों को अमेरिका या पश्चिम के सांस्कृतिक चकाचौंध में उलझा देगी अथवा भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक पहचान अक्षुण्य बनाए रखेंगे? प्रसाद ने अतीत के गौरवशाली क्षणों को अपने नाटकों में पुनः आलोकित कर हमें उजाले की एक ऐसी किरण दी है जिसमें हम अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सही से पहचान सकते हैं।

यदि हम विश्व गुरु बनना चाहते हैं तो पहले अपने राष्ट्रीय–सांस्कृतिक सरोकारों को पहचानना पड़ेगा। सांस्कृतिक पुनरुत्थान राष्ट्रवाद की अनिवार्य शर्त है। प्रसाद, भारत की अध्ययन यात्रा पर आयी कार्नेलिया को भारतीय मूल्यों संस्कृति और यहाँ की प्राकृतिक सुषमा के समक्ष अभिभूत दिखाते हैं। कार्नेलिया स्वयं कहती है नहीं चन्द्रगुप्त मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल–श्रेणी, हरी–भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक बालिकाएँ बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।''[5]

प्रसिद्ध रंग आलोचक रमेश गौतम भी कार्नेलिया द्वारा 'अरूण यह मधुमेय देश हमारा' गीत को विदेशियों के मन में भारत के प्रति अनुराग और उसकी श्रद्धापूर्वक स्वीकृति के रूप में देखते हैं। 'अनजान क्षितिज को

सहारा' भारत के वसुधैव कुटुम्बकम' से प्रेरित नवजागरणवादी आध्यात्मिक–सांस्कृतिक विवेचन में ही संभव है। छल–बल हिंसा रक्तपात आदि जैसे अशुद्ध साधनों का उपयोग करने वाले आज के सत्ता लोलुप राजनेताओं को दाण्डयायन चेतावनी देते हैं कि ''जयघोष तुम्हारे चारण करेंगे, हत्या, रक्तपात ओर अग्निकांड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनन्द नहीं। विजय–तृष्णा का अन्त पराभव में होता है, अलक्षेन्द्र, राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं।''[6]

वस्तुतः दाण्डयामन भारतीय आध्यात्मिक–सांस्कृतिक के प्रतीक पुरुष है और चाणक्य उनका क्रियाशील स्वरूप है। वह दाण्डयायन के समान निर्भीक है किन्तु समय आने पर खड्ग की भूमिका भी पहचानता है। वह राष्ट्रीय जीवन में उदात्त नैतिक मूल्यों का प्रतीक है। वह हर तरह से योग्य एवं अधिकारी होकर भी अपनी इच्छा से 'त्याग' और 'दान' करता है। क्रियाशील बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतीक चाणक्य के चरित्र के गुण 'गिफ्रटेड' नहीं बल्कि 'अर्जित' है। ऐसी विराट चेतना से सम्पृक्त है जहाँ पर 'स्व' के बंधन से मुक्त होकर 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' का जय घोष गूंजता है। संसार का कोई भी व्यक्ति जो परहितकारी हो, राष्ट्र की एकता–अखंडता का सूत्रधार हो, त्याग, बलिदान, नीतिवादी और कुशल संगठनकर्त्ता हो– वह चाणक्य के चरित्र और पद का उत्तराधिकारी हो सकता है। वर्तमान में वह निर्भीक न्याय प्रिय मीडिया और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों का प्रेरक स्वरूप है। वह सत्ता की शक्ति से उत्पन्न भय अथवा लोभ से परे है, जब उसके भीतर के तेज का विस्फोट होता है तब सत्ता सिंहासन डोलने लगते हैं। चन्द्रगुप्त नाटक में वह राजकुमार आम्भीक से मुखातिब होता है :–

''आम्भीक (क्रोध से) बोलो ब्राह्मण, मेरे राज्य में रहकर, मेरे अन्न से पलकर, मेरे ही विरूद्ध कुचक्रों का सृजन। चाणक्य – राजकुमार, न ब्राह्मण किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है। यह तुम्हारा मिथ्या गर्व है। ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रखने पर भी स्वेच्छा से इन माया स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है। ''[7]

स्पष्टतः चाणक्य किसी जाति या वर्ण का संकीर्ण प्रतिनिधि पात्र नहीं है, बल्कि विश्व बंधुत्व के धरातल पर भारत के व्यापक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का प्रहरी है। उसका मुख्य लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता थी। समकालीन सन्दर्भो में वह अपनी अस्मिता की तलाश में संघर्षरत बुद्धिजीवी का प्रतीक है जो न्याय, शिक्षा और चिकित्सा के स्तर पर समानता का पक्षधर है। वह बौद्ध धर्म के अनुयायी अमात्य राक्षस को समझाता है कि यदि सीमा पर संकट हो तो बौद्ध धर्म की अहिंसा निरर्थक हो जाती है। उनके कथनानुसार एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध सिर पर मंडराने वाली विपत्तियों से, रक्त समुद्र की आंधियों से आर्यावर्त की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होंगे। स्पष्टतः चाणक्य सीमा पर हो रहे अतिक्रमण को रोकने के लिए किसी भी 'सर्जिकल स्ट्राइक' का समर्थन करते हैं। शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व तभी संभव है जब शक्ति का उचित संतुलन मौजूद हो। चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य अंग्रेजों की जाति–पाति तथा हिन्दू–मुस्लिम संबंधी विभाजनकारी साम्प्रदायिक नीतियों को पहचान लेते हैं। वैदिक धर्म के प्रतिनिधि चाणक्य को राजा नन्द ब्राह्मण होने मात्रा से प्रताड़ित करने पर उतारू हो जाता है। उसकी शिखा को खींचकर उसे बन्दी बनाने का आदेश देता है। कुछ समय पहले तक भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर किसी के 'हिन्दू' बताने पर जो मुंह बिचकाना होता था वह आज ब्राह्मण बताने पर होता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि बदले राजनीतिक–विमर्श में आज अनेक राजनेता हिन्दू हृदय सम्राट बनने को आतुर हैं, कौन जाने कल ब्राह्मणों के निरंतर उत्पीड़न से उत्पन्न जातिगत टकराव पर भी समाज के प्रबुद्ध वर्ग में पश्चाताप का भाव निःसृत हो।

दरअसल चाणक्य उस विराट सांस्कृतिक आध्यात्मिक सामाजिक परम्परा का वाहक पात्र है, जिसने बाल्मीकि कृत समापन को समाज में जीवन और मूल्यों का आधार बनाने में सक्रिय भूमिका निभायी है। उसी परम्परा में व्यास द्वारा रचित महाभारत को भी देखा जा सकता है। स्पष्टतः राष्ट्र का उत्थान, सबकी समृद्धि और सभी का सांस्कृतिक आध्यात्मिक विकास ही चाणक्य की कर्म–योजना का केन्द्र है।

चन्द्रगुप्त नाटक में प्रसाद भारतीय समाज की क्षेत्रवादी मानसिकता पर भी कुठाराघात करते हैं। वे अखंड भारत के निर्माण के पक्षधर हैं। चाणक्य समझाते हैं ''तुम मालव हो और यही तुम्हारे मन का अवसान है न? परन्तु आत्म सम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यवर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा। क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यवर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनन्तर दूसरे विदेशी विजेता से पददलित होंगे?''[8] रचनाकार कालजयी प्रसाद आज के समय में अनेक राज्यों में उठ रहे अलगाववादी आन्दोलन पर भी दूर–दृष्टि रखते हैं। चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय एकता–अखण्डता को उद्धृत अलका के कथन को आज की कश्मीर समस्या के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। अलका ''......भाई तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं। तक्षशिला आर्यावर्त का एक भू–भाग है, वह आर्यावर्त की होकर ही रहे, उसके लिए मर मिटो।''[9]

चाणक्य लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास करता है। वह नन्द के अत्याचारी शासन से मुक्ति प्राप्त कर लोकतांत्रिाक मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। वह प्रजा का अनादर करने वाले, धर्म के क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप करने वाले, अन्याय और आतंक के बलपर शासन करने वाले विलासी राजा नन्द की सत्ता को उखाड़ फेंकने को कृत संकल्प है। वह आज के उस बुद्धिजीवी वर्ग और मीडिया का तीखा विरोध करता है जिसकी ईमानदारी और सजगता 'सलेक्टिव' है। सत्ता के खूंटे से बंधे ऐसे अमात्य से खुलकर लोहा लेते हैं। उनकी अभिलाषा समाज के

चहुमुँखी विकास के साथ शान्ति और समृद्धि से परिपूर्ण कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने की है, जिसे तुलसी ने रामराज्य कहा है।

चाणक्य नन्द के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने तथा राष्ट्रीय नियमों के तहत चन्द्रगुप्त को प्रजा कल्याण हेतु शासन करने का आदेश देते हैं। इसे दृष्ट साहित्यकार द्वारा आजादी के समय गांधी द्वारा नेहरू को दिए आदेश के रूप में भी समझा जा सकता है और वर्तमान व्यवस्था में संविधान की शपथ के रूप में मिलने वाली शक्तियों के रूप में भी जनभावनाओं का प्रतीक चाणक्य विजय उद्घोष करता है कि ''मगध के स्वतंत्र नागरिकों बधाई है। आज आप लोगों के राष्ट्र का नवीन जन्मदिवस है। स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वही तक दी जा सकती है, जहाँ दूसरों की स्वतंत्रताओं में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त। स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने देख लिया है अब मन्त्री परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।''[10]

यहाँ उल्लेखनीय है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में चाणक्य प्रधान मंत्री को मन्त्री परिषद् की सलाह पर कार्य करने को प्रेरित करता है। अकेला प्रधानमंत्री कभी–कभी निंरकुश हो सकता है जिसके निर्णय राष्ट्र को भुगतने पड़ सकते हैं। प्रसाद अपने नाट्य चिंतन में नारी की खोयी हुई गरिमा और अस्मिता को पुनःप्रतिष्ठत करना चाहता था। प्रसाद ने अपने अलका ,कार्नेलिय,ा देव सेना आदि नारी पात्रों में जहाँ एक ओर राष्ट्र प्रेम की वेदी पर प्राण उत्सर्ग करने का साहस फूँकते हैं, वही दूसरी ओर ध्रुवस्वामिनी' जैसी स्त्री अधिकारों के लिए लड़ती मुखर महिला को सामने लाते हैं। दृष्टा रचनाकार ने 60 के दशक में आए हिन्दू कोड बिल में स्त्री को दिए समान अधिकारों की भूमिका बहुत पहले पहचान ली थी। ध्रुवस्वामिनी अपने स्त्री–अधिकारों को लेकर आज की आधुनिक नारी के समान सक्रिय और सजग महिला है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रसाद का रचना संसार सांस्कृतिक राष्ट्रीय मूल्यों की धरोहर है। उन्होंने इतिहास की उर्जा का नए सन्दर्भो में उपयोग किया है। उनकी इतिहास चेतना मिथकीय बोध से संचालित है जहाँ वह काल की सीमा का अतिक्रमण कर जाती है। समकालीन सन्दर्भ में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों की संकीर्ण व्याख्या के विरुद्ध प्रसाद के चंद्रगुप्त नाटक को समझा जा सकता है। आज समय के मंच पर उठ रहे साम्प्रदायिक जाति–पांति तथा स्त्री विमर्श संबंधी प्रश्नों से जूझते हैं। यही पर चन्द्रगुप्त तथा उनके अन्य नाटकों की प्रासंगिकता का प्रश्न सार्थक हो उठता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *विशाख, भूमिका प्रथम संस्करण, विशाख, प्रसाद ग्रंथावली, संपादकः रत्न शंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद, स. 1977*
2. *हिन्दी नाटकःबच्चन सिंह, पृ सं 60 हिन्दी नाटकः बच्चन, लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद, स. 1967*
3. *चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद अंक 3, पृ सं 115, चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद, प्रसाद ग्रंथावली. खण्ड दो, संपादकः रत्न शंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद*
4. *चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद अंक 3, पृ सं 115*
5. *वहीं पृ सं 116*
6. *चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद अंक 1, पृ सं 120*
7. *वहीं पृ सं 119*
8. *वहीं, पृ सं 117*
9. *वहीं, पृ सं 123*
10. *चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद अंक 3, पृ सं 122*